हिंदी साहित्य व समाज में विभिन्न प्रकार की वैचारिक पृष्टभूमि

भानु प्रकाश शर्मा
प्रवक्ता हिंदी
मामा बालेश्वर दयाल राजकीय महाविद्यालय कुशलगढ़ राजस्थान

सार

साहित्य वह है, जिसमें प्राणी के हित की भावना निहित है। साहित्य मानव के सामाजिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाता हैय क्योंकि उसमें सम्पूर्ण मानवदृजाति का हित निहित रहता है। साहित्य द्वारा साहित्यकार अपने भाव और विचारों को समाज में प्रसारित करता है, इस कारण उसमें सामाजिक जीवन स्वयं मुखरित हो उठता है।

कवि और लेखक अपने समाज के मस्तिष्क भी हैं और मुख भी। साहित्यकार की पुकार समाज की पुकार है। साहित्यकार समाज के भावों को व्यक्त कर सजीव और शक्तिशाली बना देता है। वह समाज का उन्नायक और शुभचिन्तक होता है। उसकी रचना में समाज के भावों की झलक मिलती है। उसके द्वारा हम समाज के ह्रदय तक पहुँच जाते हैं।

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। साहित्य का सृजन जनदृजीवन के धरातल पर ही होता है। समाज की समस्त शोभा, उसकी श्रीसम्पन्नता और मानदृमर्यादा साहित्य पर ही अवलम्बित है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशान्ति या निर्जीवता एवं सामाजिक सभ्यता या असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य ही है।

कवि एवं समाज एकदृदूसरे को प्रभावित करते हैंय अतः साहित्य समाज से भिन्न नहीं है। यदि समाज शरीर है तो साहित्य उसका मस्तिष्क। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है।

मुख्य शब्द

साहित्य, समाज, लेखक, साहित्यकार, सामाजिक

भूमिका

साहित्य और समाज के इस अटूट सम्बन्ध को हम विश्वदृइतिहास के पृष्ठों में भी पाते हैं। फ्रांस की राज्यदृक्रान्ति के जन्मदाता वहाँ के साहित्यकार रूसो और वाल्टेयर हैं। इटली में मैजिनी के लेखों ने देश को प्रगति की ओर अग्रसर किया। हमारे देश में प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में भारतीय ग्रामों की आँसुओंदृभरी व्यथादृकथा को मार्मिक रूप में व्यक्त किया। उन्होंने किसानों पर जमींदारों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों का चित्रण कर जमींदारीदृप्रथा के

उन्मूलन का जोरदार समर्थन किया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जमींदारी उन्मूलन और भूमिदृसुधार की दृष्टि से जो प्रयत्न किए गए हैंय वे प्रेमचन्द आदि साहित्यकारों की रचनाओं में निहित प्रेरणाओं के ही परिणाम हैं। बिहारी ने तो मात्र एक दोहे के माध्यम से ही अपनी नवोढ़ा रानी के प्रेमपाश में बँधे हुए तथा अपनी प्रजा एवं राज्य के प्रति उदासीन राजा जयसिंह को राजकार्य की ओर प्रेरित कर दिया था नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।

अली कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल॥ साहित्य की शक्तिदृनिश्चय ही साहित्य असम्भव को भी सम्भव बना देता है। उसमें भयंकरतम अस्त्रदृशस्त्रों से भी अधिक शक्ति छिपी है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोपदृतलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती। यूरोप में हानिकारक धार्मिक रूढ़ियों का उद्घाटन साहित्य ने ही किया है। जातीय स्वातन्त्र्य के बीज उसी ने बोए हैं, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के भावों को भी उसी ने पालादृपोसा और बढ़ाया है। पतित देशों का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है।

साहित्य हमारे आन्तरिक भावों को जीवित रखकर हमारे व्यक्तित्व को स्थिर रखता है। वर्तमान भारतवर्ष में दिखाई देनेवाला परिवर्तन अधिकांशतः विदेशी साहित्य के प्रभाव का ही परिणाम है। रोम ने यूनान पर राजनैतिक विजय प्राप्त की थी, किन्तु यूनान ने अपने साहित्य द्वारा रोम पर मानसिक एवं भावात्मक रूप से विजय प्राप्त की और इस प्रकार सारे यूरोप पर अपने विचार और संस्कृति की छाप लगा दी।

साहित्य की विजय शाश्वत होती है और शस्त्रों की विजय क्षणिक। अंग्रेज तलवार द्वारा भारत को दासता की श्रृंखला में इतनी दृढ़तापूर्वक नहीं बाँध सके, जितना अपने साहित्य के प्रचार और हमारे साहित्य का ध्वंस करके सफल हो सके। यह उसी अंग्रेजी का प्रभाव है कि हमारे सौन्दर्य सम्बन्धी विचार, हमारी कला का आदर्श, हमारा शिष्टाचार आदि सभी यूरोप के अनुरूप हो गए हैं।

सत्य तो यह है कि साहित्य और समाज दोनों कदमदृसेदृकदम मिलाकर चलते हैं। भारतीय साहित्य का उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। भारतीय दर्शन सुखान्तवादी है। इस दर्शन के अनुसार मृत्यु और जीवन अनन्त हैं तथा इस जन्म में बिछुड़े प्राणी दूसरे जन्म में अवश्य मिलते हैं। यहाँ तक कि भारतीय दर्शन में ईश्वर का स्वरूप भी आनन्दमय ही दर्शाया गया है।

यहाँ के नाटक भी सुखान्त ही रहे हैं। इन्हीं सब कारणों से भारतीय साहित्य आदर्शवादी भावों से परिपूर्ण और सुखान्तवादी दृष्टिकोण पर आधारित रहा है। इसी प्रकार भौगोलिक दृष्टि से भारत की शस्यश्यामला भूमि, कलदृ कल का स्वर उत्पन्न करती हुई नदियाँ, हिमशिखरों की धवल शैलमालाएँ, वसन्त और वर्षा के मनोहारी दृश्य आदि ने भी हिन्दीदृसाहित्य को कम प्रभावित नहीं किया है।

किसी का सत्य था,

मैंने संदर्भ में जोड़ दिया।

कोई मधुकोष काट लाया था,

मैंने निचोड़ लिया।

यो मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ, नया हूँ

काव्य–तत्त्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ?

चाहता हूँ आप मुझे

एक–एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।

उपर्युक्त पंक्तियाँ सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की नया कवि, आत्म–स्वीकार से उद्धृत हैं। अज्ञेय ने रचना सृजन के दौरान की मनोस्थिति को बहुत ही सुंदर तरीके से यहाँ अभिव्यक्त किया है। साहित्य का आविर्भाव भी इसी समाज से होता है जिसे रचनाकार अपने भावों के साथ मिलाकर उसे एक आकार देता है। यही रचना समाज के नवनिर्माण में पथप्रदर्शक की भूमिका निभाने लगती है। अज्ञेय मानते हैं कि साहित्यकार होने के नाते अपने समाज के साथ उनका एक विशेष प्रकार का संबंध है– समाज से उनका आशय चाहे हिंदी भाषी समाज रहा हो जो कि उनका पहला पाठक होगा, चाहे भारतीय समाज जिसके काफी समय से संचित अनुभव को वे वाणी दे रहे होंगे, चाहे मानव समाज हो जो कि शब्द मात्र में अभिव्यक्त होने वाले मूल्यों की अंतिम कसौटी ही नहीं बल्कि उनका स्रोत भी है ।

हम पाते हैं कि साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा–बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ–साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

साहित्य में मूलत तीन विशेषताएँ होती हैं जो इसके महत्त्व को रेखांकित करती हैं। उदाहरणस्वरूप साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालाँकि जहाँ दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि

साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार से जिन वृहत्तर अथवा गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नहीं है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से है जिनसे इनका निर्णय होता है कि वे वांछित दिशाएँ कौन–सी है, और जहाँ इच्छित परिणामों और हितों की टकराहट दिखाई पड़ती है, वहाँ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है?

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका के परीक्षण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साहित्य का स्वरूप क्या है और उसके समाज दर्शन का लक्ष्य क्या है? हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभावरू साहित्यम्। यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र–वाक्य है जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हितसाधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाजदर्शन शूल–कंटों जैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी–कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का समाजीकरण किया था जिसने आगे चलकर अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा, जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।

प्रेमचंद का किसान–मजदूर चित्रण उस पीड़ा व संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे होकर आज भी अविकसित एवं शोषित वर्ग गुजर रहा है। साहित्य में समाज की विविधता, जीवन–दृष्टि और लोककलाओं का संरक्षण होता है। साहित्य समाज को स्वस्थ कलात्मक ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करता है जिससे सामाजिक संस्कारों का परिष्कार होता है। रचनाएँ समाज की धार्मिक भावना, भक्ति, समाजसेवा के माध्यम से मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य हित की सर्वोच्चता का अनुसंधान करती हैं। यही दृष्टिकोण साहित्य को मनुष्य जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध करते हैं।

हिंदी साहित्य व समाज

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को

उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ–प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साहित्य लोकमंगल की भावना से समन्वित होता है। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ इस संदर्भ में कहती है कि–

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप

हृदय में प्रणय अपार

लोचनों में लावण्य अनूप

लोक सेवा में शिव अविकार।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ–साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिये कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की।

आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटा है। वर्तमान

साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित हैं। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही हैं। हालाँकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परंतु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्त्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।

साहित्य में किसी भी समाज की परम्पराओं, रीति–रिवाजों, संघर्षों नियमों को लिखित रूप में देखा जा सकता है। एक सजग साहित्यकार समाज में घटित परम्पराओं, विचारों को अनुभूत करके शब्दों के माध्यम से वर्णित करता है। इस रूप में साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् उसके भविष्य की दिशा एवं दशा की ओर भी संकेत करता है।

साहित्य तथा समाज का सम्बन्ध अटूट. है। यदि साहित्य समाज की उपेक्षा करके कालजयी नहीं बन सकता तो किसी भी समाज को सही दिशा देने में तत्कालीन साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान भी रहता है। कहना न होगा कि साहित्य की संवेदना समाज की संवेदना होती है। किसी भी समाज की उन्नति–अवनति, परम्पराएँ, गुण–दोष साहित्य में मुखरित होते हैं। समाज में नित्यप्रति घटित होने वाली घटनाओं और उनकी संस्कृति को साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा साकार करता है।

प्रत्येक युग में यदि समाज का रूप साहित्य में चित्रित होता है तो साहित्य ने भी युगों को प्रभावित किया है। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि साहित्य तथा समाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। साहित्यकार समाज से अर्जित अनुभवों को ज्यों का त्यों वर्णित नहीं करता वरन् वह कल्पना के रंगों में अपने अनुभवों को रंगकर परोक्षरूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। कोई भी साहित्यिक रचना जिन हाथों में आकार ग्रहण करती है उन्हें संचालित करने वाली चेतना के निर्माण में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका रहने के कारण तो रचना में समाज उतरता ही है, रचनाकार के अपने साक्षात्कारों और जीवनालोचन में समाकर भी साहित्य में समाज साकार होता है। यही कारण है कि परोक्ष–अपरोक्ष रूप से साहित्य समाज को संचालित करने का दायित्व निभाता है।

समाज में साहित्य की भूमिका के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि प्रत्येक युग में साहित्य ने सजग प्रहरी की भाँति जागकर समाज को जगाने का सफल कार्य किया है। यदि हम साहित्य के इतिहास पर नजर डालें तो पायेंगे कि तत्कालीन समाज की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियाँ क्या थीं? वीरगाथा काल हो, भक्तिकाल, रीतिकाल अथवा आधुनिक काल सभी कालों में साहित्य द्वारा समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन देखे जा सकते हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि यदि साहित्य द्वारा समाज में परिवर्तन होता है तो समाज भी साहित्य के लिए अक्षय ज्ञान–सामग्री प्रस्तुत करता है।

आदिकालीन साहित्य के पृष्ठों को पढ़ने से पता चलता है कि किस प्रकार समाज में कलह होती थी। उस कलह का कारण क्या था? वीरगाथा काल में राजाओं की प्रशंसा तथा युद्ध के कारण क्या थे? पृथ्वीराज रासो तथा आदि कालीन साहित्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि तत्कालीन समाज की स्थिति क्या थी।

लोक जीवन और वर्ग संघर्ष की खोज के लिए साहित्य का उपयोग सदा से होता रहा है। शायद साहित्य की इसी भूमिका को ध्यान में रखकर ही ऑस्टिन वारेन ने लिखा है रू साहित्य और समाज के सम्बन्धों के अध्ययन का सबसे आसान तरीका है साहित्यिक कृतियों को सामाजिक दस्तावेज मानकर, सामाजिक यथार्थ की कल्पित तस्वीर मानकर उसका अध्ययन करना।

सामाजिक यथार्थ की यह तस्वीर प्रत्येक युग के साहित्य में देखी जा सकती है। भक्तिकालीन साहित्य जो 14वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक भक्ति की विभिन्न निर्गुण–सगुण धाराओं को प्रवाहित करते हुए समाज को आंदोलित करता है, को देखा जा सकता है। एक ओर कबीर ने अपने युगीन समाज को लक्ष्य करके जाति–भेद, वर्ग–भेद, छुआछूत, बाह्याडम्बर पर कठोर प्रहार करते हुए एक समाज चेता का सच्चा रूप प्रस्तुत किया है। उन्होंने समाज में फैले ऊँच–नीच के भेद–भाव के लिए हिन्दू–मुस्लिम दोनों को खरी–खोटी सुनाई है–

काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई बनाय।

तापर मुल्ला बाँग दे, बहरा हुआ खुदाय।।

यहाँ समाज का यर्थाथ रूप वर्णित कर एक स्वस्थ समाज की संकल्पना हम कबीर साहित्य में देख सकते हैं।

कबीर जब मोह–माया, लोभ, क्रोध, स्वार्थ, असंतोष व घृणा के स्थान पर प्रेम, करुणा, सत्य, संतोष एवं मानवतावाद जैसे मूल्यों को जीवन में उतारने की बात करते हैं तो निश्चित रूप से उनकी वाणी समाज को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का पुनीत कर्म करती है।

ठीक इसी प्रकार अन्य संतों ने भी अपनी वाणी द्वारा एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना हेतु मानव–मन के परिष्कार पर बल दिया है। उन्होंने व्यष्टि के माध्यम से समष्टि सुधार की कामना करते हुए साहित्य के लोकहितकारी तथा प्रभावकारी रूप को प्रस्तुत किया है।

सगुण भक्तिधारा में तुलसी साहित्य को इसी परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं। तुलसी का रामचरित मानस विश्व साहित्य में अपना बेजोड़ स्थान रखता है। मानस के विश्वव्यापी मूल्य– राजा–प्रजा संबंध, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–भाई के सम्बन्धों के आदर्श रूप को प्रस्तुत करते हैं जो तत्कालीन समाज में ही नहीं आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। अर्थात मानस सदृश कालजयी साहित्य ने न केवल अपने युगीन समाज में भूमिका निभाई वरन् विश्व–समाज में आस्था के नये आयाम स्थापित किये।

जायसी, सूर, मीरा–साहित्य में प्रेम की जो अजस्र धारा प्रवाहित हुई वह जनमानस के हृदय को सराबोर करती रही है और समाज में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराती है। कौन है जो सूर और मीरा के पद सुनकर आत्मविभोर नहीं हो जाता। भौतिक तपन से मुक्ति हेतु भक्त हृदय आज भी सूर, तुलसी, मीरा–साहित्य में अपने मन को संतुष्ट एवं शांत करता है। निश्चित रूप से भक्तिकालीन साहित्य ने समाज में अपनी एक विशेष छवि बनाई है।

17वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक मुगल साम्राज्य का बोलबाला था। राजा भोग–विलास में लिप्त रहते थे। इसी का प्रतिबिम्ब तत्कालीन साहित्य में मिलता है। नारी का नख–शिख वर्णन, संयोग शृंगार में कामुकता आदि का चित्रण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। ऐसे समाज में कवि राजदरबारों का आश्रय प्राप्त करके अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में ही कविता लिखते थे। इसीलिए रीतिकालीन साहित्य तत्कालीन वैभव–विलासिता को ही प्रदर्शित करता है। उसमें समाज को उचित मार्गदर्शन करने की प्रवृत्ति उतनी प्रखर रूप में नहीं मिलती–

सेज है, सुराही है, सुरा और प्याला है।

सुबाला है, दुशाला है, विशाल चित्रशाला है।

समाज में साहित्य की भूमिका के संदर्भ में आधुनिक काल के साहित्य को विशेष रूप से देखा जा सकता है। यह भारतीय गुलामी का काल था। समाज में आजादी हेतु छटपटाहट एवं क्रांति–बीज आधुनिक काल के साहित्य में स्पष्ट दिखाई देते हैं। 19वीं शताब्दी से लेकर आज तक का साहित्य अपने युगीन समाज की समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत करके समाज के यथार्थ रूप को उपस्थित करता रहा है।

भारतेन्दु युगीन साहित्य भारत दुर्दशा, वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवतिरू आदि साहित्यिक विधाओं में तत्कालीन भारतीय समाज की दोहरी दुर्दशा चित्रित हुई है। साहित्य के गद्य–पद्य दोनों रूपों में तत्कालीन समाज की समस्याएँ मुखरित हुई हैं। मातृभाषा के प्रचार–प्रसार एवं देशभक्ति की भावना का स्वर साहित्य में स्पष्ट सुनाई

पड़ता है

मातृभाषा उन्नति अहै, सबै उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा उन्नति के, मिटै न हिय को सूल।।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के साहित्य और समाज पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि साहित्य संवेदना शून्य हो ही नहीं सकता। समाज की सोच, समस्याएँ, हलचल साहित्य में व्यक्त होंगी ही।

यह संभव नहीं कि देश और समाज जलता रहे और साहित्यकार चौन की वंशी बजाता रहे। साहित्यकार के लिए ऐसा कर पाना संभव ही नहीं। वह अपने सामाजिक परिवेश तथा परिस्थितियों से बेखबर रहे, यह मानने का अर्थ होगा कि वह ह्रदयहीन है। यदि ऐसा नहीं है तो वह अपनी संवेदना पर समाज की दस्तक को अनसुनी नहीं कर सकता। यह बात अलग है कि कभी–कभी साहित्यकार समाज से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ता है तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से। साहित्य की समाज में भूमिका का निष्कर्ष यह नहीं निकाला जा सकता कि सामाजिक हलचल में वह अपने व्यक्तिगत सुख–दुःख को भुला दे। जब भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया जा रहा था तो प्रकृति और परमसत्ता के साथ सम्बन्ध की अनुभूति के गीत गाने वाले छायावादी कवि सार्वजनिक सरोकारों को लेकर भी रचना कर रहे थे।

इसी आलोक में प्रेमचन्द का साहित्य देखा जा सकता है। उनका साहित्य इस बात का प्रमाण है कि समाज में साहित्य की भूमिका निःसंदेह महत्वपूर्ण है। उनके उपन्यास और कहानियों के पात्र समाज के समक्ष चुनौतियाँ पैदा करते हैं, समस्याएँ दर्शाते हैं, प्रश्न पूछते हैं, संघर्ष करते हैं। अज्ञेय की कविता हिरोशिमा को इस संदर्भ में समझ सकते हैं। अमेरिका द्वारा जापान पर अणुबम गिराये जाने पर अज्ञेय ने न तो राजनीतिक दादागीरी का प्रश्न उठाया है, न आँकड़े ही दिये हैं और न ही उसके दुष्परिणाम की गणना की है।

उपसंहार

अन्त में हम कह सकते हैं कि समाज और साहित्य में आत्मा और शरीर जैसा सम्बन्ध है। समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं, इन्हें एक दूसरे से अलग करना सम्भव नहीं हैय अतः आवश्यकता इस बात की है कि साहित्यकार सामाजिक कल्याण को ही अपना लक्ष्य बनाकर साहित्य का सृजन करते रहें।

साहित्य केवल समाचार पत्र नहीं है। किसी भी समय के सामाजिक मुद्दे मानव नियति के संबंध में झकझोर देने की क्षमता से सम्पन्न होकर साहित्य के लिए प्रासंगिक होते हैं। सामाजिक जीवन में समय–समय पर जो हलचल होती है उसमें साहित्यकार की रुचि सामयिक नहीं होती दृ उसकी कल्पनाशीलता में अंर्तनिहित संदृष्टि उसमें मानवीय अभिप्रायों का साक्षात्कार करती है। रांगेय राघव की गदल कहानी में लेखक ने मूल घटना की क्रूरता के भीतर प्रेम की दुर्धर्ष प्रेरणा शक्ति का साक्षात्कार कर करुण परिणति प्रदान की है। इस प्रकार सामाजिक जीवन के क्षेत्र में घटी हुई घटना कहानी में ढलने पर व्यक्ति चरित्र के भीतर नितांत मानवीय अभिप्राय को जन्म दे गई है।

संदर्भ

• बाल्डविन, शौना सिंह शौना सिंह बाल्डविन के अंग्रेजी पाठ और अन्य कहानियों में पारिवारिक संबंध। भारत हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, 2009

• बाल्डविन, शौना सिंह व्हाट द बॉडी रिमेम्बर्स इंडिया। हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, 2009

• बेदी, राजिंदर सिंह राजिंदर सिंह बेदी की चयनित लघु कथाएँ में परिचय। नई दिल्ली साहित्य अकादमी, 2010

• बेदी, राजेंदर सिंह। लाजवंती सरोस कावासजी और के.एस.दुग्गल (सं.) अनाथों के तूफान भारत के विभाजन पर कहानियां। नई दिल्ली यूबीएसपीडी लिमिटेड, 2010

• बेनेट, टी. साहित्य के बाहर। लंदन रूटलेज.2010

• भाभा, एच.के. डिसेमिनेशन टाइम, नैरेटिव एंड द मार्जिन्स ऑफ द मॉडर्न नेशन एच.के.भाभा (सं.) नेशन एंड नरेशन, लंदन रूटलेज, 2010 में।

• भार्गव, राजुल (सं.) इंडियन राइटिंग इन इंग्लिश द लास्ट डिकेड। जयपुर रावत पब्लिकेशन्स, 2008